International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue 2, Feb. 2013
ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

मीडिया की भाषा : साहित्य और संस्कृति

संतोष कुमार डेहरिया

सारांश

जहाँ तक मीडिया की भाषा की बात है, उसका पात्रों तथा श्रोताओं दोनों से ही सीधा संबध होता है। वह समाज को पूरी तरह से प्रभावित करता है। प्रबुद्ध वर्ग को मीडिया की बढ़ती तीव्रता के लिए अनेक स्तरों पर सतर्क रहने की आवश्यकता है। चाहे समाचार पत्र हों, पत्रिकाएँ हों, कक्षाओं की पढ़ाई हो या दृश्य मीडिया के वातायन, उनकी भाषा यदि विकृत होती है तो अवश्य ही लिखित व्यक्तिगत तथा सामूहिक विरोध दर्ज किया जाना है । यदि मीडिया वालों को ऐसा लगे कि हमारा बाजार संयत या शालीन चित्रण तथा शुद्ध भाषा में होगा तो यह परिवर्तन तुरन्त हो सकता है । भारतीय संस्कृति या संस्कार को विनष्ट करने का अधिकार किसने किसको और कब दे दिया ? अथवा पाश्चात्य की आँधी में भारतीय संवेदनाएँ पिस रही हैं, उन्हें बचाना बुद्धिजीवी वर्ग का ही काम है । आज हम ऐसे मोड़ पर आ खड़े हुए हैं, जहाँ बाजार सर्व शक्तिमान बन गया है। बाजार ने सारी दुनिया में दावा करना शुरू कर दिया है।

प्रस्तावना

दुनिया और लोगों की नियति उनका भविष्य बाजार तय करेगा, बाजार की ताकतें तय करेंगी, स्टेट तय नहीं करेगा। ऐसी स्थिति में भाषा का रूप भी बाजार तय करता है । समाज में नारी का स्थान सर्वोच्च है।नारी के बिना इस सृष्टि की रचना या कल्पना निरर्थक है। यानी कि नारी वह केन्द्र बिन्दु है, जिसके आधार पर सृष्टि पल्लवित – पुष्पित होती है। प्रभु ने नारी की रचना ही ऐसे की है कि कोई उसका सानी नहीं रखता । सृष्टि में एक–से–एक सुन्दर रंगों वाले फूल होते हैं, किन्तु गुलाब के आते रौनक कुछ और हो जाती है, गुलाब समस्त के आकर्षण का केन्द्र होता है। उसी तरह सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रकृति की छटा निराली तभी होती है, जब उसका आनन्द लेने के लिए पुरूष के संग नारी हो।जहां नारी का लहराता आँचल होता है, सबकी दृष्टि अपने आप वहां चली नारी, मीडिया तथा हर जगह हर क्षेत्र की प्रगति का मेरूदंड कहिए या ठोस अवलम्ब कहिए । उसके सहारे ही तो पुरूष किले फतह कर लेता है । इलेक्ट्रानिक मीड़िया के अंतर्गत रेडियो का प्रयोग प्रसारण देश के कोने – कोने तक हो रहा है । इसके माध्यम से शिक्षा, सूचना ,खबरें तथा मनोरंजन के कार्यक्रम हिन्दी में प्रसारित हो रहे हैं।

इनकी भाषा समय स्थिति तथा कार्यक्रम के अनुरूप गढ़ ली जाती है। रेडियो की भाषा भी अपना व्यक्तित्व रखती है, चूंकि यह श्रव्य–माध्यम है, अतः इनकी भाषा में ऐसे शब्द तथा प्रस्तुति में वजन होता है कि श्रोता प्रभाव में आ जाते हैं। मीडिया केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र में भी प्रेरक कार्य करती है, जिसके लिए समाचार पत्रों, रेडियो, दूरदर्शन वीडियो फिल्म, पोस्टर्स व होर्डिंग्स आदि का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है । जो सामाजिक जीवन के अनेक लहलुओं को उजागर व साकार करते हैं– जैसे–साक्षरता, परिवार व बालकल्याण, स्वास्थ्य व पोषण, पर्यावरण, टीकाकरण, सफाई अभियान, जनसंख्या– नियंत्रण और कन्या – भ्रूण हत्या आदि अनेक प्रभावी नारे के प्रसारण व प्रचार हेतु मीडिया की विभिन्न भाषाओं का अलग – अलग क्षेत्रों के अनुरूप प्रयोग किया जा रहा है 'दुल्हन ही दहेज है,' 'बालिका का जन्म अभिशाप नहीं ',

Please cite this Article as : संतोष कुमार डेहरिया] मीडिया की भाषा : साहित्य और संस्कृति **:International Journal Of Creative Research Thoughts (Feb. ; 2013)**

'सब पढ़ें–सब बढ़ें', 'छोटा परिवार– सुखी परिवार'। एड्स व स्वाइन– फ्लू के नारों के विज्ञापन समाज में व्याप्त कुरीतियों का दमन करके आदर्श सन्देश पहुँचाते हैं, जिससे ग्रामवासियों की सोच में परिवर्तन आया है, वे अपने जीवन के प्रति जागृत हुए और विकास के अवसरों की तलाश में हैं। दूरदर्शन, रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों व धारावाहिकों से आदर्श परिवार व आदर्श जीवन की प्रेरणाएँ मिलती हैं। देश–विदेश की श्रेष्ठतम कृतियों तकनीकियों का ध्यान मीडिया के विकास और सहयोग से ही सम्भव हुआ है। इन सबके बावजूद मीडिया के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी समाज पर पड़ रहे हैं। दूरदर्शन के अनेक धारावाहिकों में सामाजिक–पारिवारिक पराकाष्ठाओं को लाँघती हुई नारियों की प्रस्तुत छवि उनके (नारी) आत्म–सम्मान को ठेस पहुँचाती हैं व पारिवारिक सम्बन्धों में दरार लाती है । परिवारों में हिंसा, विरोध, ईर्ष्या, प्रेम के प्रतिशोध का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह भारतीय परिवार, समाज व संस्कृति के नैतिक मूल्यों का हनन कर रहे हैं। क्या यही है आधुनिकता और उसका रूप ? यदि हाँ ! तो धिक्कार है ऐसी आधुनिक संस्कृति व सभ्यता को और धिक्कार है ऐसी मीडिया को जो मनुष्य को हैवान , युवाओं को अपराधी व राज्यों की मानसिकता को विकृत बना दे। अपने निजी स्वार्थों व धन प्राप्ति की अंधी दौड़ में अपने वतन के बच्चों, कर्णधारों में कुसंस्कारों के बीज बोना एक घृणित निंदनीय कृत्य है। समस्याएँ तो बेकार हैं। विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत के सविधान में मीडिया की स्वतंत्रता को सर्वोपरि महत्ता प्राप्त है । इस दृष्टि से प्रत्येक मीडिया कर्मी को अपने उद्देश्यों व कर्तव्यों को विस्मृत नही करना चाहिए ।

भारतीय टी.वी. चैनल के प्रोग्राम नारी पर आधारित होते हैं, शहरी समाज के लिए ज्यादा होते हैं। ग्रामीण महिलाओं के लिए कम प्रोग्राम दिखाए जाते हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया हो या प्रिंट मीडिया, जब वह किसी नारी का किसी भी संदर्भ में वर्णन या चित्रण करती है, वह लोगों के हृदय पर अमिट प्रभाव डालने वाली होती है। अब मीडिया को ऐसे कार्यक्रम और समाचार प्रस्तुत करने होंगे, जिनकी भाषा संयत हो। सत्य अवश्य उद्घाटित हो पर नारी की इज्जत के चीथड़े उतारकर नहीं। भाषा ऐसी हो, जिसमें नारी की गरिमा बनी रहे। अपराधों में नारी को महिमा मंडित न किया जाए। उसे शोषण और वर्ग विभाजन से बचाने का प्रयत्न करें।

मीडिया की भाषा यह होनी चाहिए जिसके द्वारा महिलाओं से जुड़ी विकास नीतियों की सूचना मिले। दहेज प्रताड़ित, बेसहारा ,बेघर स्त्रियों, झुग्गीवासी औरतों और वेश्या समस्या जैसी आम स्त्रियों की समस्याओं को उजागार करें । पारम्परिक घरेलू छवि के चित्रण के साथ वह सफल कामकाजी महिला के रूप में भी चित्रित हो । विज्ञापनों की भाषा नारी देह का आपत्तिजनक विश्लेशण करने वाली न हो । रेखा कस्तवार का कहना है– ''आज की परिवर्तित होती परिस्थितियों में जहाँ बालक और बालिका के व्यक्तित्व के विकास हेतु एक अवसर व सिर्फ शारीरिक क्षमता की अवसर व सही प्रशिक्षण द्वारा वे मानसिक व शारीरिक श्रेष्ठता को प्रस्तुत करने में भी पीछे नहीं हैं।''[1]

भाषा, साहित्य और प्रदेश की विशिष्टता जो नारी को विकसित और नई छवि के साथ पैदा करती है, वे कहीं आरोपित हैं तो कहीं नितान्त नैसर्गिक । परन्तु यह विरोध और उग्र वाचालता, आन्दोलन और अपने इतिहास बचाने या उसे ही सर्वोपरि माने जाने वाले तत्व अपनी उस सहज और नैसर्गिक रूप से विकसित होती संस्कृति के वाहक हैं। इन्होंने सांस्कृतिक विकास को भी सांस्कृतिक आरोपण के द्वारा कलुशित और गन्दला कर दिया है।''[2] विपुल सम्भावनाओं से परिपूर्ण जनसंचार के क्षेत्र में नई क्रान्ति के बाद भी नारी के प्रति मौलिक अनुशीलन का अभाव है । ''बाजारवाद की जकड़न में फँसे प्रिंट मीडिया के संसार ने आज ऐसे सम्पादकों का अकाल पैदा कर दिया है जो बाबूराम विश्णुपराड़कर की तरह पत्रकारिता को उच्च प्रौद्योगिकी के नए स्तरों के अनुकुल नए शब्द दे सके, द्विवेदी की तरह उपभोक्ता संस्कृति के विकृत और भ्रष्ट हो चुकी भाषा के परिमार्जन का बीड़ा उठा सके । वर्तमान में मीडिया चाहे वह प्रिंट मीडिया हो अखबारों में लिखे जाने वाले अग्रलेख, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, पत्रों की नीतियों और आदर्शों का आइना हुआ करती थीं, परन्तु आज वह भाषा अराजकता का दस्तावेज बन रही हैं।''[3]

समाज में होते नारी अत्याचारों को दूरदर्शन के जरिए देश के सामने रखा है । दूरदर्शन में प्रसारित धारावाहिकों ने देश की नारियों को एक जागृति दी, वहीं दूसरी ओर इस नारी समाज में फैली विकृतियों को भी हमारे सामने रखा है और इस कोशिश में हमें नारी के कई विद्रूप चेहरे दिखाई दिए, जिसने नारी की छवि धूमिल की है। इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा महिलाओं के उत्थान हेतु, महिलाओं के अधिकार क्या हैं, महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने हेतु रोजगार कार्यक्रम सभी चैनलों पर प्रतिदिन निः शुल्क अनिवार्य रूप से सुबह, दोपहर, शाम को दिखाए जाने चाहिए। तभी महिलाओं का जीवन स्तर बदलकर वह आत्मनिर्भर बन सकेंगी।

आजकल टेलीविजन पत्रकारिता पर बाजारवाद का कब्जा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया समाज को, महिलाओं को सही रूप से नई दिशा देने की बजाय उन्हें गलत दिशा और उल्टे सीधे कार्यक्रम दिखा रहे हैं। इनके लगभग आधे कार्यक्रमों में तो फिल्मी सितारों के निजी जीवन की चटपटी खबरें भरी हैं। सीरियलों को कई महीनों घसीटा जाता है । अन्धविश्वास, सम्पन्नता का फूहड़ प्रदर्शन, अवैध सम्बन्धों का महिमा मंडन का चित्रण किया जाता है तथा कभी– कभी कुछ ऐसे कारणों से महिलाओं को पारिवारिक कलह का शिकार होना पड़ता है। ऐसे कार्यक्रम में स्त्रियों को स्वयं ब्रेक लगाना होगा।

सन्दर्भ

(1) स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ – रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ–49.
(2) मीडिया और भाषा संस्कृति– कमलेश्वर ,पृ0– 56.
(3) राजभाषा पत्रिका, संस्करण जुलाई– सितम्बर,2007,पृ0–33.